साहित्यसुधा
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यकारों की रचना स्थली
वर्ष: 3, अंक 49, नवम्बर(द्वितीय) , 2018

शिक्षा दिवस ११ नवंबर
महज़ बदलाव के लिए न हो बदलाव ।
कैसी हो नई शिक्षानीति !

घनश्याम बादल

आज देश के पहले शिक्षा मंत्री व प्रख्यात शिक्षाविद् डॉ० अबुल कलाम आजाद का जन्मदिन है , जिसे शिक्षा दिवस के रूप में मनाया जा रहा है । सी सी ई के बाद बैक टू बेसिक की नीति भी शिक्षा विदों को नहीं भाई । हर सरकार अपने चिंतन या कहें विचारधारा अथवा राजनीति साधने के लिए शिक्षा नीति बदलती रहती है । एक बार फिर नई शिक्षा नीति लागू होने की पाईप लाईन में तैयार है । अब इसमें क्या होगा यह देखने वाली बात है पर क्या होना या नहीं होना चाहिए इस पर बात जरूरी है ।

“ समय के साथ बदलाव ज़रुरी हैं पर , बिना सोचे समझे नहीं , बिना दीर्घकालिक प्रभाव जाने नहीं या बदलाव करना है बस इस भी बदलाव नहीं किया जाना चाहिए । हमें हर हाल में एक व्यवहारिक , कार्यप्रधान , श्रम प्रधान , तकनीकी प्रधान , जीवनोपयोगी , रट्टू तोते न पैदा करने वाली , श्रम से हिकारत न करने वाली शिक्षा व शिक्षानीति चाहिए । हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जो हमारे बच्चों को शारीरिक व मानसिक दृढ़ता देने के साथ उनके कोमल भावों को भी बचा कर रखे ,न कि केवल ज़्यादा से ज़्यादा कमाने वाली मशीनों में उन्हें बदलने वाली संवेदनहीन शिक्षा ।”

एक बार फिर से स्कूली शिक्षा में परिवर्तन की तैयारी चल रही है 2005 में लाए गए सी0 सी0 ई0 यानि सतत एवम् समग्र मूल्यांकन पद्धति में बदलाव की बातें केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के साथ ही सुनाई देने लगीं थी ।

मानव संसाधन मंत्री के रूप में मनमोहन सरकार के मंत्री कपिल सिब्बल के कार्यकाल में आए एन सी एफ 2005 यानि राष्ट्रीय पाठ्यक्रम फ्रेम वर्क के तहत तब शिक्षा के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन हुए थे और कहा गया था कि विद्यार्थी के कार्य का मूल्यांकन केवल एक दो दिन की परीक्षा के आधार पर नहीं वरन् पूरे वर्ष के उसके कार्य के आधार पर होना चाहिए ।

इतना ही नहीं तब बच्चों में लगातार बढ़ती घातक आत्महत्या की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के मकसद से आठवीं तक किसी भी बच्चे को अनुत्तीर्ण न करने और दसवीं की परीक्षा को एच्छिक रूप से बोर्ड या विद्यालय स्तर का चयन करने का अधिकार बच्चों ही मिला था ।

इसके पीछे सोच यह थी कि परीक्षा या प्रमाणपत्र से कहीं मूल्यवान बच्चे का जीवन है और उसकी परीक्षा में सफलता या असफलता उसके जीवन में सफल - असफल होने का एक मात्र मानदंड नहीं हो सकता है । उस वक्त के विषेषज्ञों ने तो यहां तक कहा था कि अधिकांशतः परीक्षा में बहुत उच्च अंक पाने वाले बच्चे प्रायः जीवन में उन बच्चों से पिछड़ जाते हैं जो परीक्षा में साधारण से कुछ ही अच्छे अंकों के साथ पास हुए होते हैं । तब प्रो0 यशपाल के नेतृत्व में गठित कमेटी के इन नवाचारी विचारों को बड़ा समर्थन मिला था और कहा गया था कि इससे बच्चों पर पड़ने वाला परीक्षा का दबाव कम होगा और वें कहीं अधिक स्वछंद रूप से पढ़ने लिखने का माहौल पा सकेंगें ।

बात ग़लत भी नहीं थी आत्महत्या जैसी घातक प्रवृत्ति पर एकदम से इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा भी था ।

पिछली सरकार के जाते-जाते तो दसवीं से पूर्ण रूप से बोई को अलविदा कह दिया था । दसवीेंं में एक परीक्षा में पास न हो सकने वाले छात्रों के लिए मार्च के साथ - साथ जुलाई व अक्टूबर में भी परीक्षा के विकल्पों ने हर बच्चे को पास होने की गारंटी दे दी थी । दसवीं का परिणाम सौ प्रतिशत हो गया था । पर , ग्यारहवीं में असफलता का प्रतिशत बहुत बढ़ गया था व बारहवीेंं के परिणाम में भी दिक्कतें आ रहीं थी और अंदर झांक कर जब विश्लेषण किया गया तो पता चला कि भले ही दसवीं का परिणाम उच्चकोटि का दिख रहा था पर नवीं में स्थानीय स्कूलों का परिणाम भी बद से बदतर होता जा रहा था ।

अभी अभी देश के बहुत ही प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थान में हुए पैनल इंस्पेक्शन में पता चला कि एक विद्यालय का नवीं का परीक्षा परिणाम केवल 46 प्रतिशत रहा जबकि 11 वीं से भी महज 54 प्रतिशत बच्चों ने 12 वीं कक्षा में प्रवेश पाया । जबकि इसी विद्यालय का 12 वीं और दसवीं का परिणाम न केवल शतप्रतिशत था अपितु सफलता का सूचकांक यानि पी आई भी बहुत ऊंचा था स्पष्ट है कि दसवीं व बारहवीं का परिणाम अच्छा रखने के लिए नवीं व ग्यारहवीं में उन्हे रोका गया था ।

जब शिक्षकों से इसका कारण पूछा गया तो उनका कहना था कि चूंकि आठवीं तक बच्चे फेल नहीं होते हैं सो उनमें न पढ़ने लिखने की प्रवृत्ति घर कर गई है जिसके परिणाम स्वरूप वें 9वीं व 11वीं में असफल हो रहे हैं और ऐसा केवल एक विद्यालय में नहीं वरन् देशभर में महसूसा जा रहा था जो कदाचित झूठ नहीं था ।

तत्कालीन मानव संसाधन मंत्री स्मृति इरानी व उनके उत्तराधिकारी जावड़ेकर भी लगातार पिछली सरकार द्वारा लागू की गई शिक्षा नीति में खोट बताते रहें हैं और उसमें बदलाव की चर्चाएं हो रही हैं ।

अब कहा जा रहा है कि अब 'नो फेल्योर पाॅलिसी' खत्म की जाएगी । जब इस पर सवाल उठाए जाने लगे और पूछा गया कि अब अचानक ऐसा क्या हो गया या फिर बच्चों को आत्महत्या से रोकने के विचार का अब क्या होगा ? तब फिर से चिंतन - मनन की बातें हुई और पिछले साल होने वाला बदलाव अब अगले साल तक टाल दिया गया यानि एक विचार को तीन साल बाद लागू करने की बात आ गई है । सोचने वाली बात यह है कि तीन साल पहले की सोच जब तीन साल बाद लागू की जाएगी तब वह नई कैसे रहेगी ?

इस बदलाव को व्यवहारिक बनाने के लिए नई सरकार ने प्रधानाचार्यों , शिक्षकों व अभिभावकों तथा बच्चों से भी उनकी राय मांगी तो लगा कि यह एक व्यवहारिक व दीर्घकालिक शिक्षा नीति होगी । मगर पिछली सरकार ने भी यही नीति अपानाई थी फिर वह व्यवहारिक क्यों नहीं सिद्ध हुई ? यह सोचने वाली बात है ।

दरअसल सच यह है कि भारत में तथाकथित विशेषज्ञ पहले ही एक मत बना लेते हैं कि उन्हे क्या करना है और फिर नाम मात्र या छांटे गए ऐसे लोगों से रायशुमारी करवा ली जाती है जो पिछलग्गू या चापलूस किस्म के होते हैं और हां में हां मिलाते हैं । उनकी स्वाभाविक मुहर लगवा कर अपने ही विचार को लादने की वजह से ही प्रायः शिक्षा नीति हर बार असफल हो जाती है और उसे महज पांच-सात साल में ही बदलना पड़ता है ।

अगर कहें कि यही सत्य है तो शायद यह भी गलत ही होगा क्योंकि यह भी एक अर्द्धसत्य है । हर बार शिक्षा नीति में बदलाव के पीछे एक बड़ा व छिपा कारण विशुद्ध रूप से राजनैतिक

होता है जिसके पीछे एक सोच पिछली नीति को गलत ठहराना व अपनी दलगत विचारधारा को लादना भी होता है ।

कभी हिन्दुत्ववाद तो कभी सैक्यूलरिज़्म के नाम पर इन बदलावों का शिकार वें बच्चें बनते हैं जिन्हे अभी यह भी ज्ञान नहीं कि उन्हे क्या पढ़ना-लिखना चाहिए या फिर दलगत राजनीति क्या बला है । इतना ही इस सोच की वजह से देश के संसाधनों का भारी मात्रा में दुरुपयोग होता है व विकास की दर भी बाधित होती है ।

अब एक बार फिर से कहा जा रहा है कि 'नो फेल्योर' की नीति केवल चौथी कक्षा तक ही अपनाई जाएगी और उसके बाद न पढ़ने वाले बच्चे फेल भी होंगें हो सकता है इससे उनमें पढ़ाई के प्रति पनपता 'कैजुअल एटीट्यूड' खत्म हो जाए पर इस उम्र के बच्चे तो मासूम होते हैं और उनमें आत्महत्या जैसा सोचने की बुद्धि भी नहीं होती । जबकि नवीं दसवीं के बच्चे टीन एजर होते हेै उनमें ईगो को ठेस लगने पर ऐसा कदम उठाने का जोखिम पहले भी था और अब भी रहेगा तब इस परिवर्तन के क्या मायने रहेंगें ?

तो क्या आने वाली सरकारें भी बार - बार ऐसा ही करती रहेंगी ? शायद हां, क्योंकि राजनैतिक मंतव्य पूरे करने की सोच तो नहीं बदलती दिखती और यदि ऐसे बदलाव यूं ही , किसी की सोच को नीचा दिखाने , अपनी सोच को श्रेष्ठ सिद्ध करने ,अपने राजनैतिक लक्ष्य हासिल करने के लिए होते रहे तो फिर शिक्षा नीति कोई भी हो , कैसी भी हो , कोई भी लागू करे उससे ज़्यादा उम्मीद करना बेमानी ही रहेगा ।

एक बार फिर , किसी भी नीति का विरोध भी महज इसलिए ही नहीं होना चाहिए कि उसका विरोध करना है , उसका विरोध करने से हमारा फायदा या न करने से नुकसान होगा । ऐसा भी नहीं कि समय के साथ बदलाव न किये जाएं , शिक्षा ऐसा क्षेत्र है जो हर पल अपडेटशन यानि नवीकरण चाहता है । बच्चो को यदि समसामयिक व जीवन में काम न आने वाली शिक्षा दी जाए तो वह किस काम की ?

और केवल इसलिए किसी भी नीति या प्रक्रिया को जारी रहने दिया जाए कि उसको हटाने का विरोध होगा यह भी उचित नहीं है ।

बदलाव ज़रुरी हैं पर बिना सोचे समझे नहीं , बिना दीर्घकालिक प्रभाव जाने नहीं , हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जो हमारे किशोरों को एक व्यवहारिक जीवन जीने लायक बनाए , उन्हें केवल किताबी ज्ञान न दे आधुनिक तकनीक के साथ परंपरागत ज्ञान भी बचाए रखे , व्यक्तिगत ही नहीं सामाजिक उत्थान के प्रति भी उत्तरदायित्व बनाए राष्ट्रीय मूल्यों व नैतिकता भी सिखाए । एक जागरुक नागरिक बनाए ।

बेहतर हो जापान की तरह बच्चों को स्कूली शिक्षा स्तर पर ही कुछ कमाने लायक सिखाया पढ़ाया जाए , दसवीं के बाद उसे अपनी शिक्षा का खर्च खुद उठाने लायक बनाया जाए । स्कूल के भवनों का मल्टी परपज उपयोग करके सरकार आमदनी भी बढ़ा सकती है , निजी स्कूलों की फीस कठोरता से नियंत्रित करने का व्यवहारिक प्रावधान हो ,न शिक्षक को वेतन केवल सरकारी माध्यम से मिले ,स्कूल कमाई के साधन न बनें माफियाओं को स्कूली व उच्च शिक्षा दूर रखने की पुख्ता व्यवस्था भी जरूरी है ।

यह जानते हुए भी कि यह एक आसान काम नहीं है और न ही वर्तमान सरकार भी राजनीति से एकदम परे रह सकती है उम्मीद तो कर ही सकते हैं कि कई क्षेत्रों में अभिनव काम करने वाले हमारे प्रधानमंत्री शिक्षा को भी कुछ श्रेष्ठ ही देंगें अपनी सरकार की तरफ से ।

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें